National Institute of Educational Planning and Administration
(Deemed to be University)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
BANARAS HINDU UNIVERSITY

समाजिक विज्ञान और मानविकी
हिंदी में चिंतन विमर्श तथा अकादमिक लेखन

दिसंबर 12-13, 2022

कार्यशाला विवरण

कार्यशाला विवरण

समाजिक विज्ञान और मानविकी
हिंदी में चिंतन विमर्श तथा अकादमिक लेखन

संयुक्त आयोजन

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान

एवं

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय BANARAS HINDU UNIVERSITY

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

समाजिक विज्ञान और मानविकी
हिंदी में चिंतन विमर्श तथा अकादमिक लेखन
विषय पर आयोजित कार्यशाला
का विवरण

दिसंबर 12-13, 2022

स्थान: मालवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
BANARAS HINDU UNIVERSITY

सुधीर कुमार जैन
कुलपति
Sudhir K. Jain
Vice Chancellor

अप्रैल 11, 2023

शुभकामना संदेश

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है तथा एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय के मुखिया होने के नाते इसका प्रसार करना तथा हिन्दी में अकादमिक चिंतन की परंपरा को आगे बढ़ाना हमारा नैतिक कर्तव्य है । हालही में राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने साथ मिलकर संयुक्त रूप से हिंदी और स्थानीय भारतीय भाषाओं में मौलिक चिंतन एवं लेखन को बढ़ावा देने और प्रकाशन के लिए मंच प्रदान करने हेतु दिसम्बर 2022 में एक महत्वपूर्ण कार्यशाला आयोजित की । सर्वप्रथम मैं आयोजकों को अपनी शुभकामनाएं प्रदान करता हूँ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आलोक में यदि देखा जाए तो यह कार्यशाला एक राष्ट्रीय परियोजना का भी अंग है जिससे भारतीय भाषाओं में पठन-पाठन, मौलिक चिंतन एवं लेखन किया जा सके। यदि हम भारतीय भाषाओं में पठन-पाठन करवाना चाहते हैं, विद्यार्थियों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करना चाहते हैं तो यह कार्यशाला उच्च शिक्षा ले रहे है शोधार्थियों को उनकी मातृभाषा में चिंतन एवं लेखन के लिए न केवल प्रेरित करती है; बल्कि स्थानीय भाषा मे ज्ञान उत्पादन की राह में आने वाली तकनीकी बाधाओं को भी इस कार्यशाला की संज्ञान में लाकर उसे हल करने का प्रयास करती है। वह तकनीकि बाधा चाहे पारिभाषिक शब्दावलियों से संबंधित हो, श्रोतों तक पहुंच बनाने संबंधी हो;शोध की नवीन पद्धतियों संबंधी हो या अभिलेखागारों को शोध का आधार बनाने संबंधी हो।

मैंने इस कार्यशाला के तहत आयोजित विभिन्न सत्रों के शीर्षकों एवं विद्वानों की सूची को देखा है जो अपने-अपने क्षेत्र के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान है। मुझे उम्मीद है कि कार्यशाला में भाग ले रहे प्रतिभागी उनके अनुभवों एवं कार्यों से लाभान्वित होंगे। मैं उन विद्वानों को धन्यवाद एवं प्रतिभागियों को अग्रिम शुभकामनाएं देता हूँ।

सुधीर जैन

(सुधीर जैन)

Banaras Hindu University, Varanasi, 221005, U.P., India
Phone: +91-542-2368938, 2368339| E-mail: vc@bhu.ac.in | Website: www.bhu.ac.in

सन्देश

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में हिंदी एवं स्थानीय भारतीय भाषाओं में मौलिक चिंतन व लेखन को बढ़ावा देने और प्रकाशन के लिए मंच प्रदान करने हेतु आयोजित इस कार्यशाला से भविष्य में रचनात्मक परिणाम सामने आयें आप सब विद्वानों, प्रतिभागियों के साथ मैं इसकी सफलता की कामना करता हूँ। यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कार्यशालाओं की इस श्रृंखला की प्रथम कार्यशाला बीएचयू में आयोजित की जा रही है, जहाँ हिंदी नवजागरण के नायक भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने "हिंदी नयी चाल में ढली" की घोषणा की थी और हिंदी भाषा को जातीय स्मृतियों और प्रति साम्राज्यवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। आज फिर हमारे सामने भारतीय चिंतन परम्परा को हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओँ में निरन्तर करने, उसे प्राच्यवादी पूर्वाग्रहों से मुक्त कर अपनी जातीय स्मृतियों एवं अनुभवों से संपृक्त कर ज्ञानात्मक अनुशासन के नए द्वार खोलने की चुनौती सामने है। अतः इस महाअभियान को निश्चित रूप से सफल होना होगा क्योंकि हमारे पास वर्चस्व और समकालीन समाज वैज्ञानिक चुनौतियों के सम्मुख इसके सिवा कोई विकल्प नहीं है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने नीपा की इस परिकल्पना के महत्व को समझते हुए जो सहयोग व समर्थन हमें प्रदान किया है वह अभूतपूर्व है। यह सहयोग, बतौर अकादमिक संस्थान बीएचयू और नीपा की चिंता को समान धरातल प्रदान करता है। इस सहयोग के लिए हम विश्वविद्यालय के कुलपति एवं कुलसचिव के विशेष आभारी हैं। नीपा को न सिर्फ आपका सहयोग एवं समर्थन मिला बल्कि कार्यक्रम की व्यवस्थित शुरुआत, उत्साहपूर्ण प्रतिभागिता एवं गरिमामयी सांस्कृतिक प्रस्तुतियां देश के दो प्रमुख संस्थानों के बीच अकादमिक संबंधों के नए द्वार खोलती हैं।

एक अकादमिक संस्थान के मुखिया और व्यक्तिगत तौर पर, इस कार्यशाला की सफलता की कामना मैं इसलिए भी करता हूँ कि हमारा समाज एक कठिन दौर से गुजर रहा है; जहाँ स्वतंत्र एवं मौलिक चिन्तन को अनेक वर्चस्वशाली बाधाओं एवं दबावों का सामना करना पड़ रहा है। वह वर्चस्व चाहे मीडिया का हो, कार्पोरेट का हो, नयी टेक्नोलजी

का हो या वर्चस्ववादी बहुसंख्यकवाद का हो। उत्तर-उपनिवेशवादी दौर में नव-उदारीकरण ने जो नए रास्ते खोले हैं उसमें एक समाज विज्ञानी इस चुनौती का सामना कर रहा है कि हम समाज को कैसे आगे ले जाएँ और एक समावेशी समाज का निर्माण किस प्रकार करें। इसके साथ समाज के भीतर हम एक संवादात्मक तार्किकता का निर्माण किस प्रकार करें जिसका स्थान निरन्तर संकुचित होता जा रहा है। हम अपने छात्रों और शोधकर्ताओं के भीतर जड़स्थितिवाद के वरक्स प्रश्नाकुलता और ज्ञानात्मक आकुलता का निर्माण किस प्रकार करें जिससे एक वैज्ञानिक समाज का निर्माण हो सके। हमारे प्रजातंत्र की एक बड़ी उपलब्धि रही कि उसने समाज को राजनीतिक अधिकार दिया, लेकिन हम आर्थिक अधिकार अभी तक नहीं दे पाए हैं। चाहे वह शिक्षा का अधिकार हो, स्वास्थ्य का अधिकार हो, सवाल अक्षमता का हो, वृद्धवस्था की गारंटी हो या रोजगार का अधिकार हो। हमारे सामने विकल्प इतने सीमित हैं कि इन अधिकारों की गारंटी कैसे की जाएगी उसके आगे का रास्ता बहुत चुनौतीपूर्ण और निराश करने वाला है। मुझे पूरी उम्मीद है कि भारतीय भाषाओं में मौलिक चिंतन और विमर्श का जो स्वप्न को बीएचयू और नीपा साझा कर रहे हैं उसे आगे आने वाली चिंतकों की नयी पीढ़ी अपने स्थानीय अनुभवों, नए अनुसंधानों और नयी वैचारिक उद्‌द्भावनाओं से समृद्ध करेगी और समकालीन बौद्धिक चुनौतिओं के समक्ष नए रास्ते खोलेगी। इस कार्यशाला में भाग ले रहे विद्वतजन एवं प्रतिभागी छात्रों को मैं अग्रिम शुभकामनायें देता हूँ तथा पुनः इस चिंतन, विमर्श और मंथन की रचनात्मक एवं आलोचनात्मक सफलता की कामना करता हूँ।

सुधांशु भूषण
कुलपति, नीपा (कार्यवाहक)

कार्यशाला आयोजको की कलम से

नीपा तथा बनारस हिन्दू विश्विद्यालय में अध्ययन-अध्यापन कार्य करते हुए, अध्ययन का अध्यापन की भाषा से अलगाव, कक्षा में अभिव्यक्ति एवं संप्रेक्षण के स्तर पर अवधारणाओं को स्पष्ट करने, एवं देश भाषा में उसकी व्याख्या को लेकर बहुत सी समस्याओं और चुनौतियों का सामना न सिर्फ हमें, बल्कि विद्यार्थियों को भी करना पड़ता है।

विषमता यह है की बाज़ार की प्रभावशाली एवं ज्ञान के उत्तपादन की भाषा अंग्रेजी है, परन्तु बोलचाल और सामाजिक व्यवहार की भाषा हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ हैं। इस भेद के कारण समाज-विज्ञान की वर्नाकुलर में अभिव्यकि एक अनुदित अभिव्यक्ति होकर रह गई। ऐसे में आज भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं देश भाषा में अवधारणात्मक सैधांतिक चिंतन को मौलिक रूप से न सिर्फ देश भाषा में करने की आवश्यकता है, बल्कि ज्ञानात्मक अनुशासन के सभी पक्षों को भारतीय भाषाओँ में प्रचलित करने, अभिव्यक्त करने एवं व्यवहार करने की आवश्यकता है। इन्हीं आवश्यकताओं को देखते हुए, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान, नीपा ने मानविकी के मौलिक चिंतन को भारतीय भाषाओँ में करने की आवश्यकता को महसूस करते हुए, जिस कार्यशाला का प्रस्ताव किया "समाजिक विज्ञान और मानविकी: हिंदी में चिंतन विमर्श तथा अकादमिक लेखन" के रूप में हमारे सामने है। बतौर आयोजक हमने इस कार्यशाला में यह कोशिश की है, ज्यादा से ज्यादा शौध पत्र हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में लिखे एवं प्रस्तुत किये जाये। संवाद एवं विमर्श की भाषा भी हिंदी हो। इस आयोजन में हमारा वृहत्तर लक्ष्य इस दिशा में रहा है, की नीपा तथा बीएचयू से शोधकर्ताओं की एक ऐसी पीढ़ी तैयार की जा सके जो अपने शैक्षिक चिंतन को भारतीय भाषाओँ में ही आगे बढ़ावे।

इस कार्यशाला के माध्यम से हमने देश भाषा में बौद्धिक चिंतन के रास्ते में आने वाली चुनौतियों को समग्रता में हल करने एवं उस पर न सिर्फ विमर्श, बल्कि इसे संबोधित करते हुए कुछ नए रास्ते भी सुझाने का प्रयास किया है।

हम यह उम्मीद करते हैं कि कार्यशाला यह सार रूप, इस दिशा में शोधार्थियों, देशज चिन्तकों आदि के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होगा। हम यह भी उम्मीद करते हैं की नीपा एवं बीएचयू द्वारा आरम्भ किया गया यह प्रयास देश के सभी शैक्षिक संस्थानों एवं विषयों में किया जायेगा, जिससे देश भाषा में मानविकी के चिंतन को आगे बढ़ाते हुये, भारतीय बौद्धिकों की एक ऐसी विउपनिवेशित पीढ़ी तैयार की जा सके, जिसके चिंतन की भाषा अंग्रेजी और व्यवहार की भाषा स्थानीय हो, इस भेज को मिटाया जा सके।

प्रोफ़ेसर मनीषा प्रियम (नीपा)
प्रोफ़ेसर सीमा तिवारी (MMV) बीएचयू
डॉ.वैशाली रघुवंशी (MMV)

विषय वस्तु

1.	**प्रस्तावना**	**1**
2.	**स्वागत एवं उद्घाटन**	**3**
3.	**चिंतन एवं विमर्श**	**4**
	3.1 सत्र- 2: विश्वविद्यालय और उनका इतिहास: भारत में सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में अभिलेखीय संसाधनों का प्रदर्शन	4
	3.2 सत्र- 3: समाज विज्ञान और शिक्षा में अनुसंधान की पध्यतियाँ	7
	3.3 सत्र- 4: वैश्विक दक्षिण में भाषा के मुद्दे एवं शिक्षा की पुनर्कल्पना	10
	3.4 सत्र- 5: लिंग और शिक्षा	12
	3.5 सत्र- 6: शिक्षक शिक्षा - इतिहास, शिक्षाशास्त्र और अभ्यास	15
	3.6 सत्र- 7: बदलते वैश्विक क्रम में भारत की भूमिका और चुनौतियाँ	18
	3.7 सत्र- 8: भारत-चीन संबंधः वर्तमान संदर्भ और चुनौतियाँ	19
	3.8 सत्र- 9: भारत और विश्व - भारत की वैश्विक छवि	19
	3.9 सत्र- 10: हिंदी और भारतीय भाषाओं में उच्च कोटि के अनुसंधान, लेखन और प्रकाशन की चुनौतियाँ	22
समापन सत्र		**25**
	अनुलग्नक 1: कार्यक्रम का विवरण	29
	अनुलग्नक 2: प्रतिभागियों की सूची	35

1. प्रस्तावना

शैक्षिक अनुसन्धान, समाज विज्ञान और मानविकी के चिन्तन एवं विमर्श क्षेत्र में भारतीय भाषाओँ व देश के अन्य भौगोलिक व सांस्कृतिक भिन्नता वाले क्षेत्रों से स्तरीय शोध व अकादमिक लेखन को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान की यह एक महत्वपूर्ण परियोजना है। हमारा यह मानना है कि स्तरीय आलेख सिर्फ कुछ भाषाओं में या किसी क्षेत्र विशेष में ही नहीं लिखे जा सकते हैं, बल्कि उसे हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओँ में भी उत्पादित एवं अभिव्यक्त किया जा सकता है। यह संकल्पना एवं आयोजन स्थानीय भाषाओँ में भारतीय चिंतन धारा की निरंतरता की दिशा में किया गया एक प्रयास है जो औपनिवेशिक एवं वर्चस्ववादी बौद्धिक पूर्वाग्रहों से मुक्त करते हुए एक वैश्विक बौद्धिक आत्म एवं चिन्तन सरणी निर्मित करना चाहती है। 'परिप्रेक्ष्य: शोध संवाद एवं विमर्श श्रृंखला' का मुख्य उद्देश्य हिंदी भाषी क्षेत्रों में हो रहे शैक्षिक शोध को सैद्धांतिक व अवधारणात्मक आधार प्रदान कर ज्ञानात्मक अनुशासन के विभिन्न क्षेत्रों व समकालीन शैक्षिक व सामाजिक चिंतन की नवीन दृष्टियों से भी उनका परिचय करवाना है तथा उनके शोध को स्थानीय अनुभवों से संपन्न एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य प्रदान करना है, जिससे हिंदी भाषाई क्षेत्र में हो रहे अनुसन्धान को एक मानक वैश्विक स्तर प्रदान कर, प्रकाशित करने के दरवाजों को खोला जा सके। हम विभिन्न शैक्षिक, सामाजिक, वैज्ञानिक अवधारणाओं के इर्द-गिर्द संवाद, बहस करना चाहते हैं साथ ही शोध छात्र/छात्राओं से उनके शोध, चिन्तन व रुचि के अनुशासनात्मक क्षेत्रों से भी परिचय प्राप्त करते हुए उन्हें उस क्षेत्र में स्तरीय लेखन व मानक शोध आलेख प्रस्तुत करने के तरीकों, स्रोतों तक पहुँच और अभिलेखागारों पर भी संवाद करना चाहते हैं। यह प्रक्रिया न सिर्फ स्तरीय आलेख व शोध प्रस्तुत करने, बल्कि शैक्षिक विमर्श के क्षेत्र में एक देशज मनीषा के निर्माण की प्रक्रिया से भी जुड़ी हुई है, जिससे हम भविष्य में स्थानीय अनुभव के विशिष्ट क्षेत्रों में, विशेषज्ञता प्राप्त चिंतकों का निर्माण कर उन्हें सामने ला सकें व प्रकाशन का मंच प्रदान कर सकें।

इस सिलसिले में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान के साथ संयुक्त रूप से सेमिनार, परिचर्चा व कार्यशाला का दो दिवसीय आयोजन हुआ। इस कार्यशाला में इन व्यापक विषयों को शामिल किया गया:

- समाज विज्ञान में ज्ञानमीमांसा संबंधी बहस।
- समाज विज्ञान के विचार-विमर्श में भाषा के मुद्दे।
- हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में बेहतर शोध लेखन व प्रकाशित करने की चुनौतियाँ।
- विश्वविद्यालय और इतिहास: अभिलेखीय अनुसंधान का प्रदर्शन (बीएचयू, केरल विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय और पटना विश्वविद्यालय अभिलेखागार और उनके होल्डिंग्स, बीएचयू में शारदा लिपि पांडुलिपियों पर विशेष ध्यान और महामना अभिलेखागार)
- शिक्षक शिक्षा: इतिहास, शिक्षणशास्त्र और अभ्यास
- भारत और विश्व: भारत का वैश्विक स्वरूप
- हिन्दी में समाज विज्ञान संबंधी विम र्श एवं चिन्तन की चुनौतियाँ
- वैश्विक दक्षिण में भाषा के मुद्दे और शिक्षा की पुनर्कल्पना
- विकास की नीतियां, राजनीतिक परिस्थिति और संस्कृति की पुनर्कल्पना
- लैंगिक शिक्षा

2. स्वागत एवं उद्घाटन

3. चिंतन एवं विमर्श

3.1 विश्वविद्यालय और उनका इतिहास: भारत में सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में अभिलेखीय संसाधनों का प्रदर्शन

भारत में श्रुति परम्परा की अपनी जगह है, लेकिन भारत बहुत ही साक्षर देश था, उस लिहाज से हमारी लिखित परम्परा मजबूत थी। यह समझ पश्चिम की समझ है कि उस परम्परा को बचाया नहीं जाता था; ऐसा नहीं है! हमारे यहां कई तरह के पुराने संस्थान थे जहां इस लिखित परम्परा का संरक्षण बहुत तौर-तरीकों से होता था। उन सभी संस्थानों को हम श्रद्धा-भाव के कारण हम मठ और मंदिर कह लेते हैं। हमारे जितने मठ-मंदिर थे चाहे वो दक्षिण के हों, पूर्व के हों, पश्चिम के हों; सभी में व्यापक पैमाने पर हमारे एतिहासिक दस्तावेज संरक्षित हुआ करते थे और होते रहते थे। इतिहास में कुछ छोटी-बड़ी घटनाएं घटीं और सबसे बड़ी घटना जो घटी जिसका व्यापक प्रभाव पड़ा, वह उपनिवेशवाद था। तो वहां की आधुनिकता से हमने संवाद शुरू किया, तो उसमें उन संस्थनों के दस्तावेजों के सरंक्षण, सवर्धन और परिमार्जन की जो भूमिका थी वो धीरे-धीरे समाप्त हो गई। और उपनिवेशों में आधुनिकता के जो नए संस्थान बने, जिसमें एक सबसे महत्वपूर्ण संस्था जो आधुनिकता की बनी वह मॉडल विश्वविद्यालय था। तो दस्तावेज उस प्राचीन संस्था से इस आधुनिक संस्था तक आ नहीं पाए और बीच में वह कहीं चले गए। इसलिए जो विश्वविद्यालय बने उनके पास ज्ञान के वाचक तो थे लेकिन इतिहास के दस्तावेज नहीं थे और यह घटना से दुर्घटना ऐसी हुई कि धीरे-धीरे विश्वविद्यालयों ने अपने इतिहास के दस्तावेज खो दिए। यदि हम हिंदी में लिखना चाहते हैं भाषाओं को पढ़ाना चाहते हैं तो समस्या यह है कि इन सभी का समुचित इतिहास और दस्तावेज भी हमारे पास नहीं है। आप हम अपने ही बारे में नहीं जानते और यह आज भारत के 800 विश्वविद्यालयों पर लागू हो सकता है और विश्वविद्यालयों से थोड़ा बाहर निकल कर देखें तो यह घटना और व्यापक दिखाई देगी, दरार दिखाई देगी। भारत के बहुत से जिले यूरोप के देशों के बराबर होगें। भौगोलिक क्षेत्रफल के हिसाब से एक जिले के अंदर शिल्पों के ज्ञान की व्यापक श्रृंखला मौजूद है और जिले का अभिलेखागार नहीं है जहां ऐसी चीजे संरक्षित हों। स्वतंत्रता के समय एक अवधारणा थी ग्रामीण विश्वविद्यालय बनाने की, अगर ग्रामीण विश्वविद्यालय बने होते तो

भाषा की दरार न दिखाई पड़ती, आज भी विश्वविद्यालय शहरों और राजधानियों में हैं, और बीएचयू जैसे विश्वविद्यालय सत्ता के केंद्रों से दूर बने हैं। विश्वभारती ग्रामीण विश्वविद्यालयों की जागृति के साथ बना। जैसेकि श्रीनिकेतन, शिल्प और ज्ञान की श्रृंखलाओं से संवाद जो कि मातृभाषा में होना चाहिए वो वहां संभव हो पाया। कलकत्ता में यह संभव नहीं हो पाता क्योंकि बोलियों का शास्त्रीकरण विभाषा की तरफ ले जाता है, अगर बोलिया बची रहीं तो भाषा भी बच जाएगी, बोलियां अगर मर गईं तो भाषाएं दम तोड़ देंगीं। कुछ विश्वविद्यालयों में भारत के दस्तावेजों का संरक्षण हुआ जैसे- अलीगढ़ विश्वविद्यालय में संग्रह बना, उनकी स्मृति कुछ हद तक बचाई जा सकीं। स्मृति को खड़ा करने के लिए आलंबन का होना जरूरी है नहीं तो समाज-विज्ञान आधा-अधूरा रहेगा। शांति निकेतन में भी अभिलेखागार बना, लगभग 1927 से वहां पुराने दस्तावेजों के प्रति आग्रह देखा जा सकता है। उनके संरक्षण का प्रयास देखा जा सकता है। बीएचयू की रूपरेखा 1905 में शुरू हुई और 1916 में विश्वविद्याल बना। हमारी स्मृतियों का लोप ऐसा है कि जो हमारा अंतरयुक्त संयुक्त इतिहास है उसकी भी स्मृति हमें नहीं है। अतः हम स्मृति लोप से बचने का प्रयास करें, इस प्रयास से रहित होकर अगर भाषा के सवाल पर, समाज-विज्ञान पर कोई भी चर्चा अगर होगी तो वह आधी-अधूरी और एकांगी होगी।

एक शताब्दी तक बीएचयू का अपना कोई अभिलेखागार नहीं था, विश्वविद्यालय के स्मृति संरक्षण का प्रयास 2013 से शुरू हुआ है। अब यह आकार ग्रहण कर चुका है तथा यहाँ विश्विद्यालय की स्थापना से सम्बंधित लेखों को लाया गया है। जो भारतीय विश्वविद्यालयों के बौद्धिक इतिहास के दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण कदम है। यहाँ जो दस्तावेज़ हैं उसमें महामना से सम्बंधित पत्र, पत्रिकाएँ, उन पर छपी किताबें, इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल में महामना की तकरीरे, विभिन्न समय संदर्भो में दिए गए उनके भाषण और सरकार तथा अन्यों को लिखे उनके सैंकड़ो पत्र संरक्षित हैं। इस पत्राचार में महामना, महाराजा दरभंगा, सर सुंदर लाल, सर हरकत बटलर, एनी बेसेंट, बीकानेर नरेश और ऐसे अनेक लोगों से उनके आदान-प्रदान का अभिलेख मिलता है।

केरल विश्वविद्यालय में पांडुलिपियों के संरक्षण में केरल के दो लोगों का नाम अग्रणी है 1. त्रिवेंद्रम के राजा; स्वाति तिरुनाल 2. शंकर नाथ जोशी जो कुछ समय के लिए पंजाब के राजा रणजीत सिंह के मंत्री थे। लेकिन वह वापस आ गए और केरल में बस गये जहाँ वह अपने साथ ताड़ के पत्तों की पांडुलिपियों का एक बण्डल ले आये जिसका उपयोग राजा स्वाति तिरुनाल ने एक पुस्तकालय शुरू करने के लिए किया। पांडुलिपियों का वह पुस्तकालय जो अब केरल विश्वविद्यालय का अंग है। वह भारत के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक है। वहां ताड़ के पत्तों पर 75000 पांडुलिपियां संरक्षित हैं। यदि कोई शोधार्थी जो भारत व इसकी परंपराओं के बारे में जानना चाहता है तो वह उस पुस्तकालय में जाकर गहन शोध कर नयी उद्द्भावनाएँ कर सकता है। हिंदी भाषी व भारतीय भाषाओँ के शोधार्थी जो क्षेत्रीय भाषाओँ में मौलिक चिंतन करना चाहते हैं वह पुस्तकालय और उसका अभिलेख देख चकित रह जाएंगे जहाँ पर्याप्त अभिलेखीय सामग्री मौजूद है। पुस्तकालय से जो गंध पैदा होती है वह ताड़ के पत्तों पर इस्तेमाल होने वाले विशेष तेल की होती है। दक्षिण भारत में केरल एक ऐसी जगह है जहां स्कूलों में हिंदी सीखना कोई मुद्दा नहीं है, इसे अच्छी तरह से स्वीकार किया जाता है। केरल में सभी छात्र 6 साल या 10 साल हिंदी पढ़ते हैं। केरल में आरंभिक हिंदी के जनक राजा स्वाति तिरुनाल हैं जिन्होंने अनेक भारतीय भाषाओं में पदों की रचना की बल्कि बड़ी मात्रा में पांडुलिपियों के संरक्षण का भी कार्य किया। हमारे राष्ट्रीय और भाषाई एकीकरण के लिए स्वाति तिरुनाल जैसे लोगों को पढ़ना, पढ़ाना, गाना और शोध कार्य करना चाहिए। विश्वविद्यालय यदि हमें भारतीय भाषाओं में ज्ञान नहीं दे रहे हैं, यदि हमें उनकी ज्ञानात्मक परम्पराओं और इतिहास का ज्ञान नहीं है तो हम वैज्ञानिक ज्ञान के निर्माता नहीं हैं।

संसाधनों की काफी कमी सरकारी विश्वविद्यालयों में रही है लेकिन इसके साथ एक किस्म की हाईरारिकी भी हमारे मष्तिष्क में रही है कि पाश्चात्य के विश्वविद्यालय श्रेष्ठ हैं और हमारे हीन। ठीक वही श्रेष्ठ-निकृष्ट की मानसिकता हमारे भीतर भाषा और विषयों को लेकर भी काम करती है। बनारस, केरल, विश्वभारती के साथ पटना विश्वविद्यालय और मैसूर विश्वविद्यालय जहाँ भवभूति की मालती माधव, लैला मजनू, आईने अकबरी, कौटिल्य के अर्थशास्त्र के साथ अनेक पांडुलिपियाँ संरक्षित हैं जिससे होकर नए शोधकर्ताओं को गुजरना होगा। ताकि वह जान सकें कि कैसे औपनिवेशिक काल हमारे वर्नाकुलर्स में ज्ञान के उत्तपादन की प्रक्रिया को प्रभावित और प्रतिबंधित किया गया तथा उसे हम किस प्रकार पुनर्जीवित और अपनी ज्ञानात्मक परम्परा को स्थानीय भाषाओँ में निरंतर कर सकते हैं।

3.2 समाज विज्ञान और शिक्षा में अनुसंधान की पद्धतियाँ

समाज विज्ञान में देशज भाषाओँ में मौलिक चिंतन के लिए अनुसंधान पद्यतियों पर जोर दिये जाने की आवश्यकता है। समकालीन विद्वानों का एक धड़ा अनुसंधान पद्यतियों के भारतीय ससंस्करण तैयार करने पर जोर देता है यथा; हमें ज्ञान प्रणालियों को परिभाषित करने के लिए सामाजिक विज्ञान में उन नामकरणों का उपयोग करना चाहिए जो कि भारतीय बौद्धिक परंपरा और लोगों के जीवनानुभवों का हिस्सा हैं। सामाजिक विज्ञान का विचार संकीर्ण रूप से यूरोसेंट्रिक है, जो यूरोपीय ज्ञान प्रणालियों की श्रेष्ठता को सही ठहराने के लिए उत्तर-प्रबोधन के रूप में माना गया था, जो एक औद्योगिक समाज की समस्याओं से जुड़े सत्ता मीमांसीय सरोकारों की छाप लिए हुए था। उत्तर-औद्योगिक समाज; समय और स्थान के पुनर्जागरण के आविष्कार के उत्पाद के रूप में प्रकट हुआ, जिसने दुनिया को तर्क, कारण और वैज्ञानिक भौतिकता द्वारा सार्वभौमिक रूप से शासित एक आधुनिक विश्व के रूप में कल्पित किया। जहाँ एक तरफ उत्तर-प्रबोधन से शासित विकसित विश्व है और दूसरी तरफ अविकसित पतनशील विश्व है। सभी सामाजिक विज्ञान, विशेष रूप से इतिहास और नृविज्ञान, इस तरह के एक द्विभाजन को बनाए रखने का लगातार प्रयास करते हैं और ऐसा करके आधुनिकता की तत्वमीमांसा के रूपक को सही ठहराते हैं। यही धारणा सारे ही आधुनिक समाज विज्ञान के केंद्र में रहा जिसने भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रति एक अविश्वास पैदा किया जो इसके पीछे छूट जाने का कारण रहा। भारतीय ज्ञान परम्परा के विकास के भीतर जो प्राच्यवादी अपराध बोध है उससे मुक्त होने

का प्रयास किया जाना चाहिए। जहाँ एक प्रस्ताव यह है कि हमें अद्वैतवाद और ट्राईलेकटिक्स (सेल्फ, मैटर, कोज्मिक) से मदद लेनी चाहिए। अगर भारत में समाज विज्ञान और मानव विज्ञान के सिद्धांत की हमें समालोचन करनी है तो इसकी शुरूआत कम से कम अर्थशास्त्र की उस ज्ञान परंपरा से करनी चाहिए जो उससे पहले भी जाती है। अगर हम इस देश का देखेंगे तो जब अरस्तु ने नगर राज्य की कल्पना में ज्ञान परंपरा की अवधारणा को प्रस्तुत किया था उसी समय एक बृहद राष्ट्र की अवधारणा कौटिल्य ने प्रस्तुत किया था और इस प्रस्तुति में कौटिल्य ने मुख्य रूप से अपना जो अनुभव और वर्तमान में जो भारत में परिस्थितियाँ विद्यमान थी उन सारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कौटिल्य ने इस अवधारणा को प्रस्तुत किया था। मुख्य रूप से उन्होंने कहा था कि किसी भी समाज के निर्माण के लिए चरित्र जरूरी होता है। विद्या का एक मुख्य उद्देश्य ही पात्र निर्माण होता है और वो पात्र विनय से बनता है।

पद्ध्यती को उदाहरण से ही समझना बेहतर हो सकता है तो सामाजिक मानवशास्त्र की एक पद्ध्यती को उदाहरण से ही समझते हैं। उदाहरण के लिए साल-दर-साल भारत में मतदान का प्रतिशत बढ़ रहा है तो इसका क्या कारण है ? भारत में सर्वाधिक शोषित और हाशिये का व्यक्ति मतदान क्यों करता है? उसे मतदान में क्या मिलता है, आखिर इसके मायने

क्या हैं? आखिर इसके पीछे का वह क्या मनोविज्ञान है। इस बात को सर्वे से नहीं जाना जा सकता है। सर्वे से सहसंबंध तो जाना जा सकता है लेकिन मतदान क्यों; यह नहीं जाना जा सकता। तो पध्यति के रूप में एक कोई ऐसी जगह का चुनाव करें जहाँ के लोगों को आप अच्छी तरह जान-पहचान सकते हैं, उनकी मनोभावना को अच्छी तरह समझ सकते हैं। यह विश्वास निर्माण के लिए आवश्यक हैं। विश्वास हासिल करने के बाद आप उनसे सवाल कर सकते हैं। आपको उस जगह और वहां के लोगों को समझने के लिए समय देना होता है, इन्टरव्यू नहीं लेना होता। उस जगह से शोधार्थी का लम्बा और घनिष्ठ सम्बन्ध होना पड़ेगा। यह सुबह गये और शाम तक वापस आ गए जैसा नहीं है। सबसे जरुरी है जानना, वहां रहकर उनके साथ घुल मिलकर जानना। शोधार्थी को कुछ पूछने से पहले जानना होगा और अपने को पूर्व के समस्त ज्ञान और पूर्वाग्रहों से मुक्त कर वहां की समस्त संरचनाओं को बहुत नजदीक से देखना होगा। न सिर्फ देखना बल्कि अपनी अभिरुचियों को दरकिनार करते हुए उस समूह की समस्त अभिरुचियों में शामिल हो नजदीकी पर्यवेक्षण करना होगा। इसे ही हम एथन्ग्रफी कह सकते हैं। सामान्यतः सैधान्तिकी के निर्माण की प्रक्रिया या तो पश्चिम केन्द्रित है या महानगर केन्द्रित है। लोकतन्त्र के सिद्धांत को गाँव या रूरल इण्डिया से भी समझा जा सकता है यह अब तक अकादमिक जगत की सोच से बाहर है। मानवशास्त्र ज्ञान की युरोकेंद्रियता एवं महानगरीय केन्द्रीयता को ख़त्म करती है।

अपनी भाषा में समाज विज्ञान को कैसे समझा जाय, वह कोई भी भाषा जैसे हिंदी, मलयाली, बांग्ला, उड़िया हो सकती है। नए लेखक समाज विज्ञान को अपनी भाषा में किस प्रकार अभिव्यक्त करें और उसकी विभिन्न श्रेणियों को किस प्रकार डील करें। इसे लेजिस्लेटिव शोध किस प्रकार से हुए हैं से समझने का प्रयास करते हैं जैसे समाज विज्ञान में ही समाज की अपनी भाषा है और विज्ञान की अपनी भाषा। और विज्ञान की भाषा उपयोगितावादी भाषा होती है, बहुत तकनीकी किस्म की जिसने समाज की भाषा को हाशिये पर डाल दिया है। आज जितनी भी नई पध्यतियाँ हैं जैसे सर्वे, डेटा, मात्रात्मक पध्यतियाँ यह इसी प्रकार के समाज विज्ञान की भाषायें हैं। हमें शोध समस्या, शोध निष्कर्ष, शोध संरचना तक को अपनी भाषा में समझना होगा। किसी समाज में जिस लोकवृत्त(पब्लिक स्फीयर) का निर्माण होता है, वह निर्माण उस समाज की अपनी भाषा से होते हैं। अगर लोकवृत्त को भाषा के माध्यम से समझे तो 60 प्रतिशत समाज अपनी भाषा में रोज इस वृत्तान्त का निर्माण करता है। इसलिए यह जरुरी है

कि जनता के मुद्दों को उनकी ही भाषा में उठाया और समझा जाय, चाहे वह शिक्षा का मामला हो या स्वास्थ्य का मामला। लेजिस्लेटिव शोध पद्ध्यती में यह किस प्रकार कार्य कर रही है इसे भी समझना होगा। संसद में हम हिंदी-इंग्लिश में बिल दे सकते हैं जिसका अनुवाद होता है। संसद में ऐसे भी सांसद हुए हैं जो जनता की भाषा में कानून लाना और बनाना चाहते थे जिसे समाज का आखिरी आदमी भी समझ सके। जहाँ कानून के भीतर हल को हल ही कहा जा रहा हो। शोधकर्ताओं को लेजिस्लेटिव शोध करना चाहिए और उससे समाज विज्ञान को समझना चाहिए। ताकि तार्किक चुनाव और सामाजिक चुनाव के बीच निर्णय की प्रक्रिया को समझा जा सके। क्योंकि भारतीय समाज कम्युनिटेरियन समाज है जबकि वेस्ट का इंडिविजुअल। इसके कारण कई बार होता यह है की राजनीति, कानून और सामाजिकता के त्रिकोण से बने हमारे समाज को समाज विज्ञान समझने में नाकाम हो जाता है। जिसके बाद अक्सर यह देखा जाता है कि हम इस नाकामी को अस्वीकार नहीं करते हुए और ज्यादा सोफिस्टिकेटेड आंकड़ों को लाकर अपने को सही ठहराने का प्रयास करते रहते है। लोक और गणतंत्र के बीच एक द्वन्द मौजूद है परन्तु उसे समाज विज्ञान ने इस तरह लिया है कि गणतंत्र लोक को बनाता है न कि लोक गणतंत्र को। इस मान्यता की भी जांच की जानी चाहिए क्योंकि एक मत यह भी है कि इसे उल्टा समझा गया है जिसनें बहुत सारी गड़बड़ियाँ पैदा की हैं।

3.3 सत्र 4: वैश्विक दक्षिण में भाषा के मुद्दे एवं शिक्षा की पुनर्कल्पना

शिक्षा को समाज से काटकर नहीं देखा जा सकता, हमारा कुछ दायित्व होता है। विद्या वही है जो मुक्त करती है। वैश्विक दक्षिण में अंग्रेजी अभी भी स्थापित है और विमर्श की मूल भाषा है। इसके कारण से समाज विज्ञान में क्षेत्रीय स्तर पर असर पड़ रहा है जहाँ शोधार्थीयों को अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के मध्य घटित हो रहे अंतर्संबंध की मूल प्रवृत्ति और उससे उत्पन्न हो रही समस्यायों को समझना होगा। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि विचार और विमर्श का क्षेत्र वैश्विक और काफी वृहद् है जिसकी भाषा अंग्रेजी है। अक्सर होता यह है कि उसका अनुवाद क्षेत्रीय भाषाओँ में न सिर्फ बहुत सीमित स्तर पर होता है बल्कि उस सम्पूर्ण दर्शन के केवल कुछ ही अंशों का होता है, जिसके कारण क्षेत्रीय भाषाओँ में एक सम्पूर्ण विमर्श की समझ कुछ टुकड़ों-टुकड़ों में ही बन पाती है। सम्पूर्णता में कोई समझ विकसित नहीं होती है। जिसकी वजह से एक अलग तरह का अधूरा विश्लेषण शुरू होता है।

आर्थिक और भौगोलिक रूप से जो हाशिए पर खड़ा व्यक्ति है वह अंग्रेजी नहीं सीख पाता तथा जो अनुदित ज्ञान की सामग्री है वह उसको समझने के लिए जूझता है। इसलिए एक प्रस्ताव यह है कि अनुवाद उस दर्शन, विचार या सिद्धांत के सभी पक्षों का सम्पूर्णता में होना चाहिए। अध्ययन सामग्री सम्पूर्ण रूप से स्थानीय भाषा में उपलब्ध होनी चाहिए। जिससे विमर्श का एक व्यापक खाका शोधार्थी के मानस में उभर सके और वह किसी मौलिक चिंतन की तरफ मजबूत सैद्धांतिक पृष्ठभूमि के साथ बढ़ सके।

दूसरे; हिंदी या स्थानीय भारतीय भाषाओँ में यदि हम ज्ञान उत्पादित करना चाहते हैं हो हमें हिंदी भाषा तक उन पारिभाषिक शब्दावलियों के निर्माण की प्रक्रिया में भी जाना होगा जिससे सैधांतिक अवधारणाओं को अपनी स्थानीयता या सामाजिक अनुभवों से जोड़ सकें। हिंदी भाषा में समाज विज्ञान की आवाजाही कैसे हो? इसके लिए हमें कुछ और बातों की तरफ भी ध्यान देना होगा। हमारा प्रशिक्षण विश्वविद्यालयों में एक खास तरह की भाषा और संरचना में हुआ है जबकि समाज एक दूसरी भाषा में सोचता और व्यवहार करता है। अमूमन एक स्थिति यह भी बनी हुई है कि जो शोधार्थी समाज विज्ञान की पद्ध्यती से भिज्ञ हैं, उसमें सक्षम हैं; वह क्षेत्रीय भाषाओँ में कमजोर हैं और जो स्थानीय भाषाओँ से भिज्ञ हैं वह समाज

विज्ञान की पद्यतियों से अनभिज्ञ हैं। एक दूसरे स्तर पर देखें तो यह अंतर शहरी और ग्रामीण शिक्षा व्यवस्था का भी अंतर है। इस पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है क्योंकि इतिहास होता नहीं है बनाया जाता है और इतिहासकार उसे ही समझना चाहता है।

3.4 लिंग और शिक्षा

इतिहास की किताबों में महिलाओं की भूमिका को किस प्रकार दरकिनार किया गया या उनकी भूमिका को कमतर आँका गया। इस दृष्टि से अगर शोधार्थी विचार करें कि किन क्षेत्रों में महिलाओं की बौद्धिक भूमिका को जगह नहीं दी गयी, जिसे 'ज्ञानमीमांसीय अन्याय' कहा जा सकता है। समाज विज्ञान की एक सार्वभौमिक समस्या यह है कि कैसे इसे इन्क्लूसिव बनाया जाय; क्योंकि समाज विज्ञान में महिला चिंतकों को बराबरी से सम्मिलित नहीं किया गया है। यह समस्या वहां से आ रही है कि हम अपने यहाँ पाठ्यक्रमों का निर्माण इस प्रकार कर रहे हैं, जहाँ महिला चिंतकों के योगदान को स्थान नहीं दिया जाता है। अब जबकि नयी शिक्षा नीति लागू की जा रही है तब इस ज्ञानमीमांसीय अन्याय से छुटकारा पाने का एक स्वर्णिम अवसर है जहाँ हम महत्वपूर्ण महिला चिंतकों को शामिल कर सकते हैं। जब भी हम भारतीय राजनीतिक चिंतकों की बात करते हैं तो वह गाँधी, अम्बेडकर, नेहरू, लोहिया के इर्द-गिर्द ही सिमटकर रह जाती है। जबकि उनके समय में ही बहुत सी महिला चिन्तक न सिर्फ अपने विचार व्यक्त कर रही थीं बल्कि राजनीतिक रूप से सक्रीय भी थीं। जो न सिर्फ इतिहास में मौजूद हैं बल्कि अभिलेखागारों में उनका ऐतिहासिक दस्तावेज सुरक्षित भी है बावजूद इसके उनको मुख्य धारा के विमर्श या पाठ्यक्रम में शामिल क्यों नहीं किया गया। यह हमारे सामाजिक, राजनीतिक चिन्तन के शिक्षण पर बहुत बड़ा प्रश्न है। क्योंकि हमें वहां पंडिता रमाबाई, कमला देवी, एनी बेसेंट, मार्गरेट कजेल, ताराबाई शिंदे जैसी महिला चिन्तक नहीं मिलती हैं। यह सवाल सिर्फ भारतीय पाठ्यक्रमों को लेकर ही नहीं बल्कि जब हम वैश्विक राजनीतिक चिन्तन के स्तर पर भारतीय चिंतकों को लाना चाह रहे हैं तो वह सिर्फ गाँधी, टैगोर आदि तक सीमित न होकर भारतीय महिला चिंतकों को भी लेकर होनी चाहिए। पद्ध्यती के स्तर पर अगर हमें अभिलेखीय साक्ष्य नहीं मिलते हैं तब भी मौखिक इतिहास को एक साक्ष्य की तरह स्थापित किया जा सकता है कि ये महिलाएं समाज के बारे में किस तरह की संकल्पनाएँ रख रहीं थीं। अक्सर देखने में आता है कि इस समस्या को शैक्षिक संस्थान दो

तरह से हल करने का प्रयास करते हैं; एक तो यह कि आप जेंडर स्टडीज को यह पढ़ाने को कहें या अलग से महिला चिंतकों को पढ़ायें। सवाल महिला चिंतकों को सिर्फ पढ़ा देने का नहीं है बल्कि सम्पूर्ण पाठ्यक्रम या संरचना को महिला दृष्टि से देखने का है और उस दृष्टि से हमें सुधार और शोध करने की आवश्यकता है। उदाहरण के बतौर एनी बेसेंट को लें जिनका बीएचयू को शेप करने में बहुत महत्वपूर्ण रोल रहा, जिन्होंने सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना की लेकिन पूरे बीएचयू में वह इतिहास गायब है। जबकि स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राजकुमारी अमृत कौर, जेपी नायक और मीना मजूमदार के संवाद से भारतीय शिक्षण संस्थाओं में जेंडर स्टडीज की शुरुआत होती है। शैक्षिणिक संस्थानों में महिला एवं पुरुषों चिंतकों के साथ किस प्रकार अलग-अलग व्यवहार किया जाता है उपरोक्त उदाहरण इसका साक्ष्य है। यहाँ शोधार्थियों को यह सावधानी रखनी होगी कि सवाल भारतीय उच्च शिक्षा में महिलाओं की अनुपस्थिति को केवल प्रतिनिधित्व देकर भरने का नहीं है बल्कि पाठ्यक्रम और पद्ध्यती की संरचना को महिला दृष्टि से देखने का है। ज्ञान और शिक्षा के सन्दर्भ में हम जो शिक्षा दे रहे हैं उसे जेंडर के नजरिये से देख सकें। इसके साथ ही शिक्षा में जेंडर और जाति के आपसी सहसंबंध को भी देखने की जरूरत है। इसे एक उदाहरण से समझते हैं; जैसे दिव्यांग कोटे में जो महिलाएं आई हैं उनकी जाति क्या है? शोधार्थियों को यह भी ध्यान रखना होगा कि उसका आंकड़ा आसानी से मौजूद नहीं होता। हमें जेंडर लेंस की तो जरुरत है लेकिन उसके भी आगे बढ़कर हमें उसके इंटरसेक्सन को भी देखने की जरुरत हैं कि अगर पचास प्रतिशत महिलायें आ गयी हैं तो उन महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि क्या है।

हमें संस्थानों के भीतर लैंगिक समानता के लिए की जा रही पहलकदमियों को भी देखना होगा। उदाहरण के बतौर यदि जेंडर और शिक्षा के क्षेत्र में यदि आईआईटी में लैंगिक शिक्षा और उनके प्रति संस्थानिक संवेदनशीलता को लें तो उसको लेकर वहां क्या-क्या कदम उठाये जा रहे हैं इसे भी नए शोधकर्ताओं को ध्यान में रखना होगा। जिससे आईआईटी में महिला, ट्रांसजेंडर और सामजिक रूप से हाशिये पर रहे जेंडर को किस तरह तकनीकी संस्थानों की मुख्यधारा में लाया जा रहा है और किस प्रकार उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जा रही है इसका अध्ययन करना चाहिए। आर्टिकल 14 में सभी वर्गों को समान अधिकार हैं। सबसे पहले आईआईटी खड़गपुर की स्थापना हुई जिसके 16 साल बाद पहली महिला आईआईटी में दाखिल की गयी। साइंस, टेक्नोलॉजी, इंजीनियरिंग आदि में महिला नामांकन कम रहते हैं।

इसलिए भारतीय भाषाओँ में समाज विज्ञान के मौलिक चिंतन को जेंडर के इन मूलभूत मुद्दों से होकर गुजरना होगा जिससे महिला दृष्टि के स्थानीय पक्ष का निर्माण हो सके। महिला विचारकों और दार्शनिकों के कार्यों और लेखन को शामिल करने से क्या रोकता है? क्या महिलाओं की सोच के सवाल भी पद्धतिगत सवाल हैं? क्या महिलाओं के विचारों को इसलिए उपेक्षित किया जाता है क्योंकि परंपरागत स्थानों में हम उन्हें नहीं देख पाते, चाहे पाठ्यक्रम में, पाठ्यक्रम की रूपरेखा में या शिक्षाशास्त्र में? क्या होता है जब कोई इस कल्पनाशीलता का अवलोकन करे? क्या अकादमिक साहित्य में कोई पद्धतिगत बदलाव महिला को एक विचारक के रूप में शामिल करने में मदद करेगा? भारत में, विशेष रूप से सामाजिक विज्ञान में, महिला विचारकों और विद्वानों पर लेखन की कमी है। राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र और अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान के प्रमुख विषय लैंगिक-भेदभाव के शिकार हैं। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विचारों पर पेश किए गए साहित्य और विकल्प, महिलाओं की सोच, विचारों और आवाज़ों की अनुपस्थिति है।

3.5 शिक्षक शिक्षा - इतिहास, शिक्षाशास्त्र और अभ्यास

शिक्षक-शिक्षा को लेकर एक दृष्टि यह है कि यह प्राचीन काल से हमारे साथ है क्योंकि शिक्षक को ब्रह्म रूप माना जाता है। परन्तु आधुनिक समय से जब विज्ञान ने दस्तक दी तबसे ये माना जाता है कि शिक्षक को बनाया जा सकता है। 1793-1826 के दौरान अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षक शिक्षा का प्रारंभ होता है जिसके तहत कैरी, मार्समैन और वार्ड द्वारा 1793 सामान्य स्कूल का गठन होता है। 1817 से 1819 और अंत में 1826 श्रीरामपुर में कलकत्ता, पश्चिम बंगाल में शुरू होता है और आकर जून 1826 में मद्रास में पहला सामान्य स्कूल शुरू किया गया। इसके बाद जो बुड डिस्पैच आता है वो 1854 में भारत के प्रत्येक राज्यों में शिक्षण संस्थान की स्थापना का आग्रह कर दिया जाता है। इसके बाद लार्ड स्टैनली डिस्पैच 1859 में आता है लार्ड स्टेनले शिक्षण-प्रशिक्षण पर बहुत जोर दिया और कहा कि इग्लैंड से आने वाले शिक्षकों को रोका जाए और यहीं स्थानीय स्कूलों में शिक्षकों का निर्माण हो। इसके लिए उन्होंने 1859 में अनुदान सहायता नियमों में प्रावधान दिया। जिसमें गवर्नमेंट नॉर्मल स्कूल, मद्रास; (1856) सेंट्रल ट्रेनिंग स्कूल, लाहौर (1877) और माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों को तैयार करने के लिए पहला शैक्षिक प्रशिक्षण महाविद्यालय मद्रास के सैदापेट में स्थापित किया गया। हंटर आयोग भारतीय शिक्षा आयोग के नाम से जानते हैं आया जिसमें शैक्षिक पाठ्यक्रम पर विचार हुआ और शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थान के लिए और 1882 तक आते-आते पुरूषों के लिए 116 और महिलाओं के लिए 15 प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किये गए। फिर गवर्नमेंट ऑफ इंडिया Revolution on Education Policy 1904 और 1913 में भी इस तरह के प्रावधान किए गए लेकिन यह कम महत्वपूर्ण माने गए। इसके बाद यहां भी परिवर्तन आया और कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग 1917 जिसको हम सैडलर आयोग के नाम से जानते हैं, उन्होंने शिक्षक शिक्षा के प्रशिक्षण में खराब गुणवत्ता की तरफ इशारा किया और कहा कि स्नातक स्तर पर एक वैकल्पिक विषय के रूप में इसकी शुरूआत पुनः होनी चाहिए। मैसूर विश्वविद्यालय में 1925 में शिक्षक प्रशिक्षण के एकमात्र उद्देश्य के लिए शिक्षा संकाय प्रारंभ किया गया। हर्टाग समिति (1929) जिसमें 13 विश्वविद्यालय ने शुरू की एक नई डिग्री बी.एड 1932 में और बाम्बे ने शुरू की पोस्ट ग्रेजुएट डिग्री जिसे हम एम.एड के नाम से जानते हैं, 1936 में शुरू की। बुनियादी शिक्षा (1937) महात्मा गाँधी द्वारा आधार वाक्यों से शुरू हुआ था जिसमें बुनियादी विद्यालयों के शिक्षकों का प्रशिक्षण कार्यक्रम

भी यहां से प्रारंभ हुआ था। 1938 में इलाहाबाद में एक बेसिक ट्रेनिंग कॉलेज की स्थापना की गई और 1938 में वर्धा में विद्या मंदिर ट्रेनिंग स्कूल की शुरूआत की गई। एबोट-वुड रिपोर्ट (Abbott Wood Report 1937) और सार्जेण्ट रिपोर्ट (Sargent Report 1944) यहां भी व्यावाहरिक प्रशिक्षण के बारे में बात की गई और साथ में रिफ्रेशर कोर्स के नाम से जानते हैं उसे अनुसंधान के रूप में बढ़ावा देने का काम किया।

स्वतंत्र भारत में 1947 के बाद विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948 इस वर्कशॉप के लिए जो मूल है कि मानव जीवन का इतिहास है वो उतार-चढ़ाव वाला रहा है लेकिन इसी तरह शिक्षक शिक्षा का भी इतिहास उतार-चढ़ाव वाला रहा है लेकिन यदि हम पूरे पथ को देखें तो विकास प्रगतिशील रहा है। शिक्षक भी समाज का एक अभिन्न अंग है और राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जितने भी परिवर्तन आ रहे हैं शिक्षक-शिक्षा उनका नेतृत्व करता है और भविष्य को एक नई दृष्टि हैं। आज हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को लेकर उत्साहित हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी दस्तक देने को तैयार हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में समाज विज्ञान के लिए क्या-क्या शिक्षणशास्त्र निर्धारित की गई है हमारे चिन्तन, शोधपद्धति के विकास के लिए एक नया क्षेत्र है जिसका विकास अधिगम के लिए किया जाना है? यह भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि हमारी शिक्षा नीति उस समय आई है जब देश बहुत बड़ी महामारी से गुज़रा है जिस दौरान हमारे शिक्षण में, अधिगम के तरीकों में और मूल्यांकन के तरीकों में बहुत सारी बदलाव देखने को मिले हैं। इक्कसवी सदी में समाज अध्ययन एक प्रतिभागितामूलक उपागम की तरफ इंगित करता है। प्रतिभागी अधिगम की ओर यह संकेत बतौर नवीन शिक्षण विधियाँ हमें अपनी कक्षाओं में अप्रत्यक्ष शिक्षण के माध्यम से अपनाएं जाने जैसेकि वाद-विवाद, समस्या समाधान, अनुकरण, नाट्यीकरण, अनुभवात्मक अधिगम आदि की आवश्यकता है। यह शिक्षण उपागम कुछ इस तरह बनती हुई दिखाई दे रही है

1. अप्रत्यक्ष शिक्षण अधिगमकर्ता के रचनावादी उपागम पर अधिक प्रभावी होगी जहाँ अधिगमकर्ता अपनी अवधारणायें खुद ही बनाता है और उस विषय सम्प्रत्यय के प्रति अवबोध विकसित करता है।

2. सहयोगात्मक उपागम जहाँ अधिगमकर्ता एक दूसरे के साथ मिलकर कार्य करता है।
3. मननात्मक उपागम विद्यार्थी आत्म विमर्श और आत्म विश्लेषण के द्वारा अपना मूल्यांकन करेगा।
4. एकीकृत उपागम: विद्यार्थी एवं अध्यापक ऐसे वातावरण की रचना करेंगे जिसमें भूत और वर्तमान विषय का आपसी जुड़ाव होगा आने वाले विषयों को एक दूसरे के साथ समावेशित करना और उसका अध्ययन करना ।
5. अन्वेषण आधारित उपागम: जिसमें विद्यार्थी को हम कुछ अन्वेषण के लिए, शोध अध्ययन के लिए हम बतौर अध्यापक प्रेरित करेंगे जिससे विद्यार्थी का प्रयोगात्मक अधिगम होगा। हमें ज्यादा से ज्यादा विद्यार्थी केन्द्रित पद्यतियों को अपनाना होगा।

एक पेशेवर शिक्षक के निर्माण का एक मुख्य पक्ष है प्रशिक्षण । प्रशिक्षण एक ऐसा पक्ष है जहाँ पहले माना जाता था कि शिक्षक जन्मजात होते है परन्तु आज के दौर में शिक्षक प्रशिक्षण द्वारा निर्मित किये जा रहे हैं। जो शिक्षक हम निर्मित कर रहे हैं उनके अंदर वास्तविक धरातल पर कार्य करने का पक्ष विकसित होने चाहिए, जिसके लिए प्रशिक्षण एक अति आवश्यक पहलू है। यदि हम चिकित्सा क्षेत्र के प्रशिक्षण के तरीके को देखें तो वहां पर डॉक्टर उस प्रशिक्षण के मूल्य के साथ काम करते हैं। हमारी पूरी शिक्षा प्रणाली कहीं-न-कही शिक्षक-प्रशिक्षण के द्वारा निर्मित शिक्षकों पर ही आधारित है। अगर शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान को हम प्राथमिक और माध्यमिक में विभाजित करें तो प्राथमिक में भी जो अध्यापक तैयार होते हैं वो भी कहीं न कहींशिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान के माध्यम से और माध्यमिक शिक्षक के साथ-साथ जो उच्च शिक्षा के अध्यापक जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने संदर्भित कर रही है कि जो अध्यापक नियुक्त हों उनको भी 6 माह के शिक्षण अनुकूलन के साथ लाया जाए इसके साथ ही पीएचडी का जो पाठ्यक्रम विकसित हो रहा है, उसमें भी कहा गया है कि एक सेमेस्टर इस पर केन्द्रित होना चाहिए कि आप कैसे शिक्षण करेंगे, कैसे मूल्यांकन करेंगे। तो यही स्पष्ट है कि प्रशिक्षण के पक्ष को सरकार भी ध्यान में रख रही है, लेकिन शिक्षक प्रशिक्षण के हमारे संस्थान चाहे वो बीएड है या एमएड है या बीटीसी, बीएलएड, डीएलएड के पाठ्यक्रम हैं उसमें प्रशिक्षण को शायद हम कहीं न कहीं नजरअंदाज सा कर रहे है। जो हमारे लिए निर्देशन के पैमाने बने हुए है उस दिशा में लक्षित तो होते हैं लेकिन हम उसकों वास्तविक स्थितियों में ले

जाकर और जिस सघनता के साथ करना चाहिए वो हम नहीं करा पा रहे हैं। जो सुपरविज़न दिशानिर्देश बच्चों को हम मेंटर के साथ मिलना चाहिए वो जवाबदेही के साथ हम नहीं कर पा रहे है। हमारे शोधार्थी वहां पहुंचते हैं और क्या किस तरीके से करना वो समझ में नहीं आता। हम अध्यापकों को वहां पर होना चाहिए लेकिन हम वहां समय नहीं दे पा रहे हैं।

3.6 बदलते वैश्विक क्रम में भारत की भूमिका और चुनौतियाँ

बदलते वैश्विक क्रम में भारत के सामने प्रमुख चुनौतीयों को अगर भारत और चीन के सन्दर्भ में देखें तो एक राष्ट्र के रूप में आक्रामक चीन का उदय भारत के लिए एक प्रमुख चुनौती है इसके साथ ही चीन और पाकिस्तान की बढ़ती नजदीकी को भारत के लिए एक प्रमुख चुनौती मानना चाहिए। इसके अलावा भारत का क्षेत्रीय स्तर पर पड़ोसी देशों में मध्य कोई स्थायी ऑर्डर स्थापित करने में अभी तक सफल नहीं हो पाना भी चिन्ता का एक प्रमुख कारण है। आर्थिक स्तर पर राष्ट्रीय असमानता, तकनीकी विकास, निर्माण के क्षेत्र में चीन के मुकाबले पीछे रह जाना हमारे सामने प्रमुख चुनौतियों के रूप में खड़ी हैं। जिसमें सर्वाधिक प्रमुख चुनौती समाज व शिक्षा के भीतर वैज्ञानिक सोच का अभाव जो बतौर मानव संसाधन

हमारे समाज को तकनीकि और वैज्ञानिक सोच के साथ बनने वाले विकसित समाज की राह में सबसे बड़ी बाधा उत्पन्न कर रही है।

3.7 भारत-चीन संबंध: वर्तमान संदर्भ और चुनौतियाँ

वर्तमान समय में भारत-चीन सीमा पर दोनों देशों के मध्य पैदा हुई असामान्य स्थिति को सामान्य नहीं कहा जा सकता यह स्थिति अभूतपूर्व है, बड़ी मात्रा में सैनिकों की उपस्थिति को दोनों देशों के मध्य रिश्तों के बहुत बड़े बदलाव का सूचक मानना चाहिए और सीमा विवाद ही अब दोनों देशों के बीच रिश्तों के केंद्र में आ चुका है। इससे पहले दोनों देश यह मानते थे कि उनके बीच सीमा विवाद औपनिवेशिक देन है लेकिन इससे हमारे रिश्तों पर कोई असर नहीं पड़ता लेकिन अब इस आपसी मान्यता को चीन ने बदल दिया है। अब चीन के लिए दोनों देशों के रिश्ते के लिए सीमा पर अमन-चैन या पूर्व की यथास्थिति बहाल रखना कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। इसके साथ ही चीन दुनिया में एकमात्र ऐसा देश है जो वैश्विक स्तर पर भारत के उदय को नजरअंदाज कर रहा है। न सिर्फ नजरअंदाज कर रहा है बल्कि उसकी राह में बाधा उत्पन्न कर रहा है जिसका हमारे ऊपर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। उदाहरण के तौर पर सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता के मामले को देखा जा सकता है। दोनों देशों के मध्य आयात-निर्यात में भारी असंतुलन भी चिंताजनक है। रणनीति के स्तर पर सैन्य शक्ति में निवेश, आर्थिक प्रगति, मित्र राष्ट्रों से गठजोड़ एवं समाज एवं शिक्षा में वैज्ञानिक सोच और तकनीकि विकास ही धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्तन ला सकता है।

3.8 भारत और विश्व: भारत की वैश्विक छवि

भारत की अपनी आरंभिक विदेश नीति जिसमें सोवियत और कैपिटलिस्ट ब्लॉक में किसी के साथ न जुड़ने से शुरू की। जिसमें दोनों तरह के मोड़ ऑफ़ प्रोडक्शन; सोसलिस्ट और कैपिटलिस्ट से भारत ने किनारा किया, जिसे संयुक्त राज्य अमरीका ने कभी पसंद नहीं किया। लेकिन कालांतर में दोनों देश एक दूसरे के काफी नजदीक आये और अपने पूर्वाग्रहों को दरकिनार करते हुए आपसी रिश्तों को आगे बढ़ाया। अब यह सम्बन्ध राजनीतिक, आर्थिक, वार ऑन टेररिज्म, सूचनाओं के आदान-प्रदान और आयात-निर्यात में सार्थक वृद्धि के जरिये

एक नए स्तर पर पहुँच चुका है जो भारत के लिए नए द्वार खोल रहा है या कहें कि एक नया आयाम हमारी राजनीति, समाज और विदेश नीति के स्तर पर जुड़ रहा है।

वैश्विक स्तर पर देशों के आपसी सम्बन्ध चिंतन व चर्चा में इतने शक्ति-केन्द्रित हैं कि यूरोपियन यूनियन से भारत के संबंध विषय पर चिंता लगभग न के बराबर है। इसलिए यह प्रश्न उठता है कि भारत और यूरोपियन यूनियन के सम्बन्ध पर चर्चा क्यों नहीं होती है। इसलिए इस प्रश्न पर चिंतन आवश्यक है कि क्या यूरोपियन यूनियन शांति-केन्द्रित क्षेत्रीय समूह है या रणनीतिक रूप से हस्तक्षेपकारी? जिस समूह की अपनी क्षेत्रीयता प्रमुख होगी जाहिर है दुनिया से उसका संबंध अन्य देशों के आपसी नीतिगत संबंधों की तरह नहीं होगा। यूरोपियन यूनियन से भारत के सम्बन्ध तो रहे लेकिन वह कभी राजनीतिक सम्बन्ध नहीं रहे जिसे गर्मजोशी भरा सम्बन्ध कहा जा सके। लेकिन हाल के वर्षों में इसमें गुणात्मक बदलाव आया है जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला, ग्रामीण विकास सम्बन्धी परियोजनाएं शामिल रहीं अब यह सम्बन्ध व्यापारिक और रणनीतिक स्तर पर आगे बढ़ रहा है जिसमें पर्यावरण एवं आतंकवाद भी शामिल है। इसके साथ ही रूस-युक्रेन वार के बाद स्थितियां बदल गयी हैं जहाँ यूरोपियन यूनियन के लिए भारत केंद्र में आया है।

भारत की वैश्विक छवि की शुरुआत उसकी आतंरिक परिस्थितियों से होती है। अगर हमने अपनी क्षेत्रीय छवि और आतंरिक संबंधों में सुधार नहीं किया तो शायद हम विश्वस्तर की बात न कर पायें और बहुत कोशिश के बावजूद अपनी सकारात्मक वैश्विक छवि न बना पायें। अगर हम दक्षिण एशिया को देखें तो हम अभी अपने औपनिवेशिक इतिहास से बाहर आये हैं जिसकी शुरुआत हमने औपनिवेशिक खुमारी में उत्तर औपनिवेशिक वास्तविकता से की है, इसके साथ-साथ दक्षिण एशिया में भारत शीत युद्ध के दौरान महाशक्तियों के आपसी वर्चस्व की छाया से भी ग्रसित रहा है। आज हमें इन सबसे मुकाबला करते हुए अपने भविष्य को निर्मित करना है। दक्षिण एशिया अभी उत्तर-औपनिवेशिक जी-20 का नारा एक धरती, एक परिवार और एक भविष्य है जहाँ भारत के धार्मिक ग्रंथों में वसुधैव कुटुम्बकम की परिकल्पना पहले से मौजूद रही है।

जब भी हम छवि या वैश्विक सम्बन्धी कोई चिंतन करते हैं तब हमें इस पक्ष को भी मूल्यांकित करने की आवश्यकता होगी कि हमारे मानस में किसी देश की छवि या राष्ट्रों के आपसी संबंधों की छवि है वह किसकी निर्मिती है या वह किन अध्ययनों पर आधारित है या वह संचार माध्यमों के किस पक्ष द्वारा निर्मित है। उदाहरण के लिए अगर चीन को ही लें तो भारतियों के मन में बनी चीन की छवि किसी शोध या अध्ययन पर आधारित नहीं है। इसीलिए द्विपक्षीय संबंधों में चीन को किस तरह पढ़ें? यदि बात भारत की वैश्विक छवि की है तो यह छवि इन उपादानों पर निर्भर करेगी: भारत का महाशक्तियों से, क्षेत्रीय शक्तियों से और द्विपक्षीय कैसा सम्बन्ध है? अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में भारत का रोल किस तरह का है? और तीसरा प्रमुख, अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भारत की प्रतिक्रिया किस तरह की होती है जैसे पर्यावरण, उर्जा असुरक्षा, आतंकवाद, खाद्य असुरक्षा आदि पर हमारा रुख क्या है? इसके साथ-साथ आपका सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्तर पर घरेलू प्रदर्शन कैसा है? शोधकर्ताओं को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि यदि आप घरेलू राजनीति को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति या संबंधों से काटकर देखते हैं तो आप एक अच्छे विशेषज्ञ नहीं हो सकते और उन संबंधों पर सार्वभौमिक चिन्तन नहीं कर सकते। इस बाइनरी से शोधार्थियों को बचने की जरुरत है। शोधकर्ताओं को भारत-चीन या किसी द्विपक्षीय सम्बन्ध में अपने सन्दर्भों को बनाने की जरुरत होगी, अपनी दृष्टि के

प्रतिमान खुद निर्मित करने होंगें। उन्हें किसी अन्य देश के द्विपक्षीय संबंधों के सन्दर्भ या विचार को अपना सन्दर्भ या विचार नहीं बनाना चाहिए जैसे चीन के बारे में अमरीकी विचार को भारत-चीन संबंधों के लिए प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। शोधकर्ताओं को राजनीतिक मूल्यों के इर्द-गिर्द ही वैश्विक छवि को देखना चाहिए।

3.9 सत्र: हिंदी और भारतीय भाषाओं में उच्च कोटि के अनुसंधान, लेखन और प्रकाशन की चुनौतियां

किसी भाषा की पहचान एवं वैशिष्ट्य सिर्फ उस भाषा की सरलता, बोलने वालों की संख्या, जिस देश में बोली जा रही है उसका वैश्विक वर्चस्व और बाजार आदि पर ही नहीं निर्भर नहीं करता। यदि किसी भाषा की व्यापकता के यह पैमाने निर्धारित कर लिए गए तो यह उसे सीमित करना ही होगा। किसी भाषा की प्राथमिक पहचान उस भाषा में हुए चिंतन, सैधांतिक उत्पत्तियों, उसके अपने दार्शनिकों और विश्व दृष्टि से भी होती है। यदि किसी भाषा में चिन्तन करने वाला कोई दार्शनिक नहीं है या उस भाषा में दार्शनिक चिन्तन संभव नहीं हो पाता तो इसका अर्थ यह है कि अभी उस भाषा या समाज को परिपक्व होने में समय लगना है। वह बाजार या व्यवहार की भाषा तो हो सकती है लेकिन चिंतन की नहीं। यह परिपक्वता तभी आ सकती है जब उसे बोलने वाला समाज उस भाषा में विचार और सत्व का आत्मसंघर्ष निर्मित करे। यह आत्मसंघर्ष प्राथमिक स्तर पर तभी संभव है जब किसी भाषा में विचारों की अभिव्यक्ति पर किसी प्रकार की बंदिश या वर्चस्व या बहुमत का दबाव न हो। यह उस भाषा के बौद्धिक और समाज का दायित्व है कि वह अपनी भाषा को ज्यादा से ज्यादा सामाजिक एवं राजनीतिक रूप सेसमावेशी बनाये और भाषा के भीतर किसी भी किस्म के अन्यीकरण या पहचान को जन्म न लेने दे। यदि हम अपनी भाषा को 'हिंदी, हिन्दू हिंदुस्तान' के नारे से परिभाषित करने लगे तो यह एक ऐसे अन्य को जन्म देगी की हमारी भाषा सिर्फ किसी एक खास समुदाय या देश की भाषा बनकर रह जाएगी और सभी अन्य जो हिन्दू या हिन्दुस्तानी नहीं हैं उससे बाहर हो जायेंगे। हम अपनी भाषा की यह सीमा नहीं निर्धारित कर सकते कि उसका व्यवहार सिर्फ वही करे जो हिन्दू और हिन्दुस्तानी हो। सोचिये; दुनिया का भाषाई स्वरुप कैसा होता कि जर्मन भाषा सिर्फ वही बोलता जो जर्मन हो और स्पेनिश को स्पेनियन, अंग्रेजी को अंग्रेज। यदि कोई मुझसे पूछे क्या हिंदी दर्शन की भाषा है तो मेरा उत्तर होगा नहीं। यदि

मुझसे कोई पूछे कि क्या हिंदी विचार की भाषा है; तो मेरा उत्तर होगा एक संभावना बनती दिख रही है। यदि कोई पूछे कि क्या हिंदी संवाद की भाषा है; तो उत्तर होगा राजनीतिक रूप से नहीं व्यक्तिगत संवाद के रूप से हाँ हिंदी को विचार एवं दर्शन की भाषा के रूप में स्थापित होने के लिए अभी काफी लम्बा सफ़र तय करना है। यह प्रयास उसी दिशा की तरफ है। उसने संस्कृत, पाली, अरबी, फ़ारसी, ग्रीक, जर्मन या फ्रेंच जितनी लम्बी और लोकतान्त्रिक विचार, दर्शन एवं संवाद की संवादात्मक यात्रा तय नहीं की है। इस यात्रा के लिए उसे अपनी संरचना के भीतर तमाम जातिगत, पित्रसत्तात्मक, भेदमूलक पूर्वाग्रहों से एक आत्म संघर्ष की प्रक्रिया से गुजरते हुए अपनी भाषागत संरचना और विचार पध्यती तैयार करनी होगी। यह प्रक्रिया भाषा के भीतर अपने आप नहीं घटित नहीं हो सकती। भाषा के भीतर यह आत्मसंघर्ष की प्रक्रिया ही आने वाले या इस भाषा में लेखन करने वाले शोधकर्ताओं का लक्ष्य होना चाहिए।

इसे अगर मोटे अर्थों में कहें तो किसी बनती हुई भाषा या अपनी मातृभाषा या अपने लेखन की भाषा या ज्ञान के उत्पादन की भाषा को हर तरह के पूर्वाग्रह, हर तरह के भेदभाव या भाषा के भीतर जन्म दिए जा रहे किसी भी प्रकार के समुदायगत, भौगोलिक या लिंगगत अन्यीकरण से बचाना और निर्माण करना हमारा लेखन के माध्यम से प्रथम लक्ष्य होना चाहिए।

हिंदी में समाज लेखन के मुद्दे और चुनौतियाँ क्या हैं? किसी भी अनुशासन में वर्तमान में भारत में कौन से ऐसे मुद्दे हैं जो प्रभावित करते हैं इसमें पहला है साम्प्रदायिकता, दलित साहित्य का उभार, नेहरू के बाद नक्सलवाड़ी हुआ उसका बहुत बड़ा प्रभाव साहित्य पर पड़ा, मंडल कमीशन, उदारीकरण, भुमंडलीकरण, साम्प्रदायिकता आदि ऐसे सवाल हैं जिसका ध्यान हमें समकालीन हिंदी अकादमिक लेखन में रखने की आवश्यकता है। जिस पर समाज विज्ञान में काम हो रहा है। समाज विज्ञान को साहित्य के साथ जोड़े जाने की भी आवश्यकता है जिससे बहुत सी नयी चीजें निकालकर सामने आयेंगी। जो अच्छी हिंदी जानते हैं वो समाज विज्ञानं के बहुत सी पद्यतियों से अनभिज्ञ हैं। हमें हिंदी और समाज विज्ञान की पद्यतियों को साथ लाने की आवश्यकता है।

हिंदी में समाज विज्ञान लेखन में क्या नहीं करना चाहिए जिसे कथ्य और माध्यम अर्थात भाषा के दो स्तरों पर देखना चाहिए। वर्तमान जो समाज विज्ञान है वक एक खास किस्म

से राजनीतिक निर्माण है जो सामाजिक संरचना को जीवित या पुनर्जीवित करता है। भाषा के स्तर पर भी कई संरचनाओं को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। एक शोधकर्ता को स्थापित मान्यता या संरचना को अनफोल्ड या अन्डू करने की आवश्यकता है। यह बात कथ्य के स्तर पर है। भाषा के स्तर पर बहुत सारी सावधानियां बरतने की आवश्यकता है। पुरुषवादी भाषा स्थापित रहती है जो ज़माने से होता आ रहा है। रूसो यदि यह कहता है कि 'मेन इस बोर्न फ्री बट ही इज एव्रिवेयर इन चेन' लेकिन वह इसके साथ स्त्रियों की बात नहीं करता। इन सारी बातों के प्रति सजग रहना है जिससे हिंदी सीखने वाले लोगों में एक चेतना और सजगता विकसित हो और सचेत एवं सजग समाज विज्ञान का विकास हो। रूप के स्तर पर अवधारणा के अनुवाद से काम नहीं चलेगा हमें सचेत अर्थों में शब्द विकसित करने होंगें। अनुवाद की शैली से काम नहीं चलेगा हिंदी और अंग्रेजी की संरचना अलग-अलग हैं। अच्छा यह है कि सोचकर पचाकर लिखा जाय न कि अनुवाद पर निर्भर रहा जाय और मौलिक चिंतन का विकास हो। इसके लिए हमें संगठित तरीके से आगे आगे बढ़ने की आवश्यकता है।

समापन

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः"

(कल्याणकारक, न दबनेवाले, पराभूत न होने वाले, उच्चता को पहुँचानेवाले शुभ विचार,शुभ संकल्प,शुभ निश्चय चारों ओर से हमारे पास आयें।)

हम अपने चिन्तन और वाद-विवाद की भारतीय परंपरा के भीतर ज्ञान के बहुविध स्रोतों को स्वीकार करते रहे हैं। हम भारतियों के जीवन का मूल तत्व वाद-विवाद और संवाद रहा है। जहाँ से हमें अपने चिंतन और विमर्श की निरंतरता को निर्मित करना है। वेद में कहा गया है "आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः" इसलिए हम चिंतन को किसी एक भाषा का बंधक न मानकर उसे मुक्त करें। ज्ञान की जो विरासत है, वह किसी एक भाषा में सुरक्षित नहीं है बल्कि वह तमाम भाषाओँ में सुरक्षित है इसलिए हमें जितना भी हो सके उन भाषाओँ के मध्य विमर्श को जिन्दा रखने और करने की आवश्यकता है। भारतीय ज्ञान परम्परा की एक विरासत और है कि हमने अपमान सहकर भी प्रश्न पूछना बंद नहीं किया। इसे भारतीय परम्परा में कुछ कहानियों के माध्यम से जाना जा सकता है। एक उपनिषद कालीन कहानी है याज्ञवल्क और गार्गी की। जहाँ गार्गी याज्ञवल्क से पूछती है कि "हे ऋषिवर! जल में हर पदार्थ बड़ी सरलता से घुलमिल जाता है, परंतु मैं आपसे पूछना चाहती हूँ कि यह जल किसमें जाकर मिल जाता है?"

ऋषि याज्ञवल्क्य ने गार्गी के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि 'जल अन्ततः वायु में ओतप्रोत हो जाता है।" इसके पश्चात गार्गी का अगला प्रश्न था कि 'वायु किसमें जाकर मिल जाती है?" याज्ञवल्क्य का उत्तर था कि "अंतरिक्ष लोक में।" अब गार्गी ऋषि याज्ञवल्क्य के हर उत्तर को प्रश्न में परिवर्तित करती चली जा रही थी। इस प्रकार गंधर्व लोक, आदित्य लोक, चन्द्रलोक, नक्षत्र लोक, देवलोक, इन्द्रलोक, प्रजापति लोक और ब्रह्मलोक तक जा पहुंची और अन्त में गार्गी ने पुनः वही प्रश्न पूछ लिया कि – "यह ब्रह्मलोक किसमें जाकर मिल जाता है" जब गार्गी ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी तो गार्गी को लगभग डांटते हुए याज्ञवक्ल्य ने कहा- "गार्गी, इतने प्रश्न मत करो, कहीं ऐसा न हो कि इससे तुम्हारा सिर छिन्न-भिन्न हो जाय।" याज्ञवल्क द्वारा निरुत्तरित होने पर गार्गी को प्रश्न करने से रोक दिया गया, यदि अनुत्तरित प्रश्न पर रोक न लगाकर यदि उसे सामूहिक चिंतन का विषय बनाया गया होता तो भारतीय चिन्तन ब्रह्माण्ड के रहस्योद्घाटन की दिशा में भी आगे बढ़ा होता।

एक और उदाहरण से चिंतन और विमर्श की अपनी परम्परा को समझते हैं; जहाँ हम देखेंगे कि भारतीय चिंतन में योगदान सिर्फ ऋषियों और दार्शनिकों का ही नहीं है बल्कि उस समाज का भी है जो मुख्य धारा में नहीं रहा, भले ही वह लिखित न हो; आचार्य शंकर जिन्होंने अद्वैतवाद मत की स्थापना की एक दिन वह काशी में, जहाँ उन्होंने 'मनीषा पंचकम' की रचना की, गंगा स्नान करके लौट रहे थे तो उनका रास्ता रोके एक चांडाल खड़ा था तो शंकराचार्य अपवित्रता के भय से दूर हट गये, वह उससे बचना चाहते थे की चांडाल से स्पर्श न हो जाय। चांडाल ने फिर शंकर से कहा कि तुम तो अद्वैत वेदांती हो किससे अपवित्र होने की बात सोच रहे हो? जो तत्व तुममे है क्या मुझमें उससे कुछ अलग है, जब हम दोनों एक ही हैं तब एक दूसरे से अलग कैसे हो सकते हैं? तो हमारी परम्परा में जो तत्वदार्शनिक हैं उसे भी ज्ञान के व्यवहारिक पक्ष का पर लाने का काम समाज का व्यक्ति करता है जिसे हाशिये पार डाल दिया गया है। इस कहानी के माध्यम से हम भारतीय चिंतन परंपरा में उद्भूत महान सिद्धांतों के सैद्धान्तिक और उसके व्यावहारिक स्तर पर अनुपालन के बीच भेद को भी देखते हैं। इसका एक प्रमुख कारण हमारे लिए भौतिक जगत को 'माया' मानने का भी रहा है। लोक और परलोक के इस भेद का अभेद हमें करना होगा।

इसे एक और उदाहरण से समझा जा सकता है; एक बार राजा भोज अपनी प्रजा की स्थिति जानने के लिए सामान्य जन का वस्त्र पहनकर राज्य में अकेले ही निकल पड़े। रास्ते में उनको एक लकड़हारा मिला जो अपने सिर पर लकड़ियों का भार रख रहा था। यह देखकर राजा भोज ने उस लकड़हारे से पूछा "किन्ते 'बाधति' भारम्?" (क्या यह भार तुमको कष्ट दे रहा है?) वह लकड़हारा राजा भोज की बात को सुनकर उनसे कहता है: "भारन्न बाधते राजन्, यथा 'बधति' बाधते।" (अर्थात् हे राजन्! मुझे यह भार उतना कष्ट नहीं दे रहा है, जितना आपका यह "बाधति" (अशुद्ध भाषा प्रयोग) कष्ट दे रहा है (बाधते) संस्कृत भाषा में – "बाध्" (कष्ट देना) धातु का प्रयोग नित्य आत्मनेपद में होता है, जिसके रूप "बाधते, बाधेते, बाधन्ते" के समान चलते हैं, लेकिन राजा भोज ने जो उस लकड़हारे से जो प्रश्न किया था उसमें उन्होंने "बाध्" धातु को परस्मैपदी रूप (बाधति बाधतः बाधन्ति) में अशुद्ध प्रयुक्त करते हुए पूछा था कि "किन्न ते भारं 'बाधति'" इसी अशुद्ध भाषा प्रयोग के कारण वह सामान्य लकड़हारा, राजा से कहता है कि "हे श्रीमान्! मुझे यह लकड़ी का भार उतना कष्ट नहीं दे रहा है जितना आपके द्वारा किया गया भाषा का अशुद्ध प्रयोग (बाधते को बाधति कहना) कष्ट दे रहा है।"

भारतीय भाषाओँ में मौलिक चिंतन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसकी निर्भरता अभिलेखीय साक्ष्यों पर ही पूरी तरह निर्भर हो, इतिहास या चिन्तन के जिस क्षेत्र में अभिलेखीय दस्तावेज मौजूद नहीं हैं तो क्या समाज और इतिहास के उस पक्ष पर चिन्तन या शोध नहीं होगा? भारतीय इतिहास या समाज का कोई ऐसा पक्ष नहीं है जिस पर कोई न कोई साहित्य

या सिद्धांत की पुस्तक मौजूद न हो। यदि उदाहरण के बतौर मध्यकालीन या आदिकालीन भारतीय काव्य या कवियों को ही उदाहरण के बतौर लें तो वह काव्य और कविता ही भारतीय सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन है। हमें शोध, विवेचन और विश्लेषण की ऐसी भी पद्ध्यती विकसित करनी होगी जो काव्य के पीछे जाकर, कविता की संरचना के भीतर से उस समय सामाजिक की वास्तविकता को साक्ष्य के बतौर प्रकट कर सके। ठीक उसी तरह दक्षिण भारत में लिखे गए मध्यकालीन ग्रंथों में भारतीय राज्य एवं सामाजिक स्थिति का वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए यदि भारतीय ग्राम्य व्यवस्था के बारे में जानना हो तो हमें "उत्तरमेरुर" का अध्ययन करना ही होगा। ठीक उसी तरह भारतीय राज्य व्यवस्था के बारे में यदि चिन्तन करना हो तो "अमुक्तमाल्यदा" जैसे ग्रंथों को संज्ञान में लाना ही होगा।

अनुलग्नक 1: कार्यक्रम का विवरण

भारतीय सामाजिक विज्ञान और मानविकी: हिंदी में चिन्तन-विमर्श तथा अकादमिक लेखन
(12-13 दिसंबर, 2022)

कार्यक्रम स्थल- मालवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र, बीएचयू

दिन & तारीख	समय (अवधि)	सत्र	अतिथि/संसाधन व्यक्ति	सत्र प्रवाहकत्त्व
कार्यशाला के पूर्व (11/12/2022) रविवार	05:30 - 06:30 बजे	सांस्कृतिक कार्यक्रम	अतिथि एवं प्रतिभागी	डॉ. कविता पांडे
दिन 1 (12/12/2022) सोमवार	9:00 - 9:30 बजे पूर्वाह्न	पंजीकरण	कार्यक्रम का स्थान: ग्राउंड फ्लोर, मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र, बी.एच.यू	डॉ. धीरज कुमार \ डॉ. रूही रावत
	9:30 - 10:30 पूर्वाह्न	स्वागत एवं उद्घाटन	बीएचयू कुलगीत स्वागत- प्रो. इंदु मेहता (प्रिंसिपल, एमएमवी, (बीएचयू) कार्यशाला की अवधारणा प्रो मनीषा प्रियम, नीपा, नयी दिल्ली प्रो सुधांशु भूषण (कार्यवाहक वीसी, नीपा, एवं डीन, नई दिल्ली) (मुख्य अतिथि) प्रोफेसर अरुण कुमार सिंह, कुलसचिव, बी.एच.यू (अध्यक्ष) धन्यवाद ज्ञापन: डॉ. सीमा तिवारी और डॉ. वैशाली रघुवंशी एमएमवी, बीएचयू	डॉ. विवेक कुमार सिंह डॉ. वैशाली रघुवंशी

दिन 1 (12/12/2022) सोमवार	10:30-11:00 पूर्वाह्न	अल्पाहार		
	11:00-11:30 पूर्वाह्न	तकनीकी सत्र 1: उत्तर प्रदेश में युवा, शिक्षा एवं शोध: भाषा का महत्व (ऑनलाइन सत्र	प्रो. क्रेग जेफरी, मेलबोर्न विश्वविद्यालय अध्यक्ष: प्रो. कुमार सुरेश , नीपा, नई दिल्ली	डॉ. अपाला साहा (अकादमिक समन्वयक) प्रीति देवी & ईमान बनर्जी (संवाददाता)
	11:30-1:00 बजे	तकनीकी सत्र- 2: विश्वविद्यालय और उनका इतिहास: भारत में सार्वजनिक श्विविद्यालयों में अभिलेखीय संसाधनों का प्रदर्शन	डॉ. ध्रुव कुमार सिंह (बीएचयू) प्रो. अचुथ शंकर नायर (केरल विश्वविद्यालय) प्रो. मनीषा प्रियम (नीपा) अध्यक्ष: प्रो. सुधांशु भूषण (नीपा)	डॉ. अंजलि यादव (अकादमिक समन्वयक) सूरज नाथ और विनय कुमार (संवाददाता)
	1:00-2:00 बजे	भोजानवकाश	स्थान:मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र	
	2:00-3:30 बजे	तकनीकी सत्र- 3: समाज विज्ञान और शिक्षा में अनुसंधान की पध्यतियाँ	प्रो॰ संजीव कुमार एचएम (दिल्ली विश्वविद्यालय) डॉ. मुकुलिका बनर्जी (लन्दन स्कूल ऑफ इक्नोमिक्स) प्रो. रवि रंजन (ज़ाकिर हुसैन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय) मार्टिन हॉस (ऑनलाइन), लंदन स्कूल ऑफ इक्नोमिक्स, लंदन अध्यक्ष: प्रो. मनीषा प्रियम नीपा, नई दिल्ली	भोजानवकाश

	3:30-3:45 बजे	चाय ब्रेक		
दिन 1 (12/12/2022) सोमवार	वकाश 3:45-5:15 बजे	तकनीकी सत्र- 4: वैश्विक दक्षिण में भाषा के मुद्दे एवं शिक्षा की पुनर्कल्पना	प्रो. सत्येन्द्र कुमार (ऑनलाइन) (ज्यूरिख विश्वविद्यालय) प्रो. देवेन्द्र चौबे (जे.एन.यू) प्रो. श्रद्धा सिंह, (बीएचयू) प्रो. धर्मेंद्र (उच्च शिक्षा विभाग, एमपी) डॉ. बन्दना झा (वीसीडब्ल्यू, बीएचयू) अध्यक्ष: डॉ. सीमा तिवारी (एमएमवी, बीएचयू)	डॉ. हरीश कुमार एवं डॉ. विवेक सिंह (अकादमिक समन्वयक) अर्चना (संवाददाता)
दूसरा दिन 13/12/2022 मंगलवार	8:00 - सुबह के 09:30	नाश्ता		
	10:00-11:30:00 बजे सुबह	तकनीकी सत्र- 5: लिंग और शिक्षा	प्रो. मनीषा प्रियम (नीपा) प्रो. लता नायर (सैंट टेरेसा कॉलेज) डॉ. प्रियंका झा (बीएचयू) डॉ. प्रियंका त्रिपाठी (आईआईटी-पटना) अध्यक्ष: प्रो. मधु कुशवाह , (बीएचयू)	डॉ. रूही रावत (अकादमिक समन्वयक) अटल द्विवेदी और शिवानी (संवाददाता)

	11:30-11:45 पूर्वाह्न	चाय ब्रेक		
	11:45-12:45 बजे	तकनीकी सत्र- 6: शिक्षक शिक्षा - इतिहास, शिक्षाशास्त्र और अभ्यास	प्रो. सुनील कुमार सिंह (बीएचयू) प्रो. नागेन्द्र कुमार (बीएचयू) डॉ. शैलेंद्र कुमार वर्मा (एमजीकेवीपी) प्रो. आशा पांडे (वीसीडब्ल्यू, राजघाट) डॉ. अजय कुमार सिंह (बीएचयू) अध्यक्ष: प्रो. हरिकेश सिंह पूर्व प्रमुख एवं डीन, शिक्षा संकाय बीएचयू, पूर्व कुलपति, जेपी विश्वविद्यालय, छपरा	डॉ. सोमू सिंह, (अकादमिक समन्वयक) & डॉ. पंकज सिंह, (अकादमिक समन्वयक) श्री निशांत भारद्वाज (संवाददाता) सुश्री तृप्ति सिंह (संवाददाता)
दूसरा दिन 13/12/2022 मंगलवार	12:45-1:45 अपराह्न	भोजनावकाश		
	1:45-2:15 अपराह्न	तकनीकी सत्र- 7: बदलते वैश्विक क्रम में भारत की भूमिका और चुनौतियाँ	पूर्व राजदूत विवेक काटजू अध्यक्ष: डॉ.धनंजय त्रिपाठी (दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय)	डॉ. वैशाली रघुवंशी (शैक्षणिक) समन्वयक) आरती और सौम्या शिवांगी (संवाददाता)
	2.15-2.45 बजे	तकनीकी सत्र- 8: भारत-चीन संबंध: वर्तमान संदर्भ और चुनौतियां	पूर्व राजदूत अशोक कंठ अध्यक्ष: प्रो मनीषा प्रियम नीपा, नया दिल्ली	

	2:45 - 3:00 अपराह्न	चाय ब्रेक		
	3:00 - 4.00 बजे	तकनीकी सत्र- 9: भारत और विश्व - भारत की वैश्विक छवि	प्रो. अरविंद कुमार (भारत और अमेरिका) (जेएनयू) डॉ. धनंजय त्रिपाठी (भारत एवं यूरोपीय संघ) (दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय) डॉ. वैशाली रघुवंशी (भारत और दक्षिण एशिया) (एमएमवी, बीएचयू) डॉ. ऋतुषा तिवारी (भारत एवं चीन) (शहीद भगत सिंह कॉलेज) समापन टिपण्णी: राजदूत अशोक कंठ	डॉ. कविता पांडे (अकादमिक समन्वयक)
दूसरा दिन 13/12/2022 मंगलवार	4:00- 4:45 बजे	तकनीकी सत्र- 10: हिंदी और भारतीय भाषाओँ में उच्च कोटि के अनुसंधान, लेखन और प्रकाशन की चुनौतियाँ	प्रो देवेन्द्र चौबे (जेएनयू) प्रो. धर्मेंद्र कुमार (उच्च शिक्षा विभाग, एमपी) डॉ. रवि प्रकाश (नीपा) अध्यक्ष: प्रो. हरिकेश सिंह पूर्व प्रमुख एवं डीन, शिक्षा संकाय बीएचयू पूर्व कुलपति, जेपी विश्वविद्यालय, छपरा	डॉ. संजय कुमार (अकादमिक समन्वयक) अमिता हलधर और अलका सिंह (संवाददाता)

	4:45 - 5:00 पूर्वाह्न	चाय ब्रेक		
दूसरा दिन 13/12/2022 मंगलवार	5.00- शाम 5.30 बजे	समापन सत्र	बीएचयू कुलगीत स्वागत: डॉ. अपाला साहा एमएमवी, बीएचयू प्रस्तुतियों का प्रतिवेदन: डॉ. सीमा तिवारी एमएमवी, बीएचयू प्रो. कुमार सुरेश, नीपा, न्यू दिल्ली (अतिथियों का सम्मान) डॉ. अभय ठाकुर वित्त अधिकारी, बीएचयू (विशिष्ट अतिथि) अध्यक्ष: प्रो. सुधांशु भूषण (कार्यवाहक कुलपति, नीपा एवं डीन, न्यू दिल्ली)	डॉ. सोमू सिंह डॉ. भानु पी सिंह

अनुलग्नक 2: प्रतिभागियों की सूची

नीपा -बीएचयू कार्यशाला

	नाम	विश्वविद्यालय संबद्धता	राज्य	सम्पर्क
1.	सुधांशु भूषण	नीपा	दिल्ली	sudhanshu@niepa.ac.in
2.	कुमार सुरेश	नीपा	दिल्ली	kumarsuresh@niepa.ac.in
3.	मनीषा प्रियम	नीपा	दिल्ली	priyam.manisha@gmail.com
4.	रवि प्रकाश	नीपा	दिल्ली	toprakashravi@gmail.com
5.	मुकुलिका बनर्जी	लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स	दिल्ली	mbaerjee@lse.ac.uk
6.	देवेंद्र चौबे	जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय	दिल्ली	dkchoubey@mail.jnu.ac.in
7.	धनंजय त्रिपाठी	साउथ एशियन यूनिवर्सिटी	दिल्ली	dhananjay@sau.ac.in
8.	संजीव कुमार एच.एम	दिल्ली विश्वविद्यालय	दिल्ली	skumarhm@polscience.du.ac.in
9.	रित्युषा तिवारी	दिल्ली विश्वविद्यालय	दिल्ली	rityusha.tiwary@sbs.du.ac.in
10.	अरविंद कुमार	जेएनयू	दिल्ली	arvindk@mail.jnu.ac.in
11.	विवेक काटजू	पूर्व राजदूत	दिल्ली	vivekdkatju@gmail.com
12.	अशोक कंठ	पूर्व राजदूत (भारत-चीन संबंध)	दिल्ली	ashokkantha@gmail.com
13.	रवि रंजन	दिल्ली विश्वविद्यालय	दिल्ली	raviranjan@zh.du.ac.in
14.	प्रियंका त्रिपाठी	आईआईटी पटना	पटना	priyankatripathi@iitp.ac.in
15.	अच्युतशंकर नायर	केरल विश्वविद्यालय	केरल	achuthsankar@keralauniversity.ac.in
16.	लता नायर	अमृता विश्व विद्यापीठम, कोची	कोच्चि	drlathanairr@gmail.com
17.	धर्मेंद्र	पीजी कॉलेज विपुल	मध्य प्रदेश	monad96@gmail.com
18.	बद्री नारायण	जीबी पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान	इलाहाबाद	
19.	ध्रुव के. सिंह	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	singhdhrubkumar@gmail.com
20.	वंदना झा	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	प्रो.बंदनाझा@gmail.com

	नाम	विश्वविद्यालय संबद्धता	राज्य	सम्पर्क
21.	प्रियंका झा	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	priyankajha@bhu.ac.in
22.	सदानंद साही	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	सदानंदशाही@gmail.com
23.	वैशाली रघुवंशी	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	vaishaliraghu@bhu.ac.in
24.	नागेन्द्र	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	mail2nagendra2@gmail.com
25.	छाया सोनी	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	me.chhaya26@gmail.com
26.	अजय कुमार सिंह	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	ajaysingh0025@gmail.com
27.	नमिता सिन्हा	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	namitasinha.ampgc@gmail.com
28.	आशा पाण्डे	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	ashapandeymountanne@gmail.com
29.	हरिकेश सिंह	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी	
30.	क्रेग जेफरी	मेलबर्न विश्वविद्यालय	ऑनलाइन	craig.jeffrey@unimelb.edu.au
31.	मार्टिन हॉस	लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स	ऑनलाइन	m.haus@lse.ac.uk
32.	सतेंद्र कुमार	इंस्टीट्यूट ऑफ एशियन एंड ओरिएंटल स्टडीज, ज्यूरिख विश्वविद्यालय, स्विट्ज़रलैंड	ऑनलाइन	satendrakumar1@gmail.com